दास्तान ए अशफ़ाक़

असग़र मेहदी

दस्तान ए अशफ़ाक़

असग़र मेहदी

प्रकाशक: नॉटनल

प्रकाशन: मई, 2025

© *असग़र मेहदी*

दास्तान गोई

“क़िस्सा” अरबी ज़बान का लफ़्ज़ है, जबकि “दास्तान” एक फ़ारसी लफ़्ज़ है, और दोनों के मायने दिलचस्प कहानी के हैं। दास्तान गोई कहानी बयान करने का एक मख़सूस अंदाज़ है जिसमें दास्तानों को ख़ास अंदाज़ में पेश किया जाता है। कहते हैं कि “क़िस्सा गोई” का फ़न इतना ही क़दीम है जितनी कि इन्सानी तहज़ीब-ओ-सक़ाफ़्त।

मुहम्मद हुसैन आज़ाद ईरानी दास्तान गवैयों की तस्वीर इस तरह खींचते हैं:

“ईरान के बाज़ारों में और अक्सर क़हवा-ख़ानों में एक शख़्स नज़र आएगा कि सर ओ-क़द खड़ा दास्तान कह रहा है और लोगों का अंबोह अपने ज़ौक़ ओ शौक़ में मस्त उसे घेरे हुए है। वो हर मतलब को निहायत फ़साहत के साथ नज़म-ओ-नस्र से मुरज़ा यानि दूध पिलाता है और सूरत ए माजरा को इस तासीर से अदा करता है कि समां बांध देता है। कभी हथियार भी सजे होता है, जंग के मारके या ग़ुस्से के मौक़े पर शेर की तरह बिफर खड़ा होता है। ग़रज़ कि ग़ैज़-ओ-ग़ज़ब, ऐश-ओ-तरब या ग़म व अलम की तस्वीर फ़क़त अपने कलाम से नहीं खींचता बल्कि ख़ुद उस की तस्वीर बन जाता है। उसे हक़ीक़त में बड़ा साहिब ए कमाल समझना चाहिए क्यों कि उन मुख़्तलिफ़ कामों को अदा करना होता है, जो कि थेयटर में एक संगत कर सकती है।

18वीं और 19वीं सदी में फ़ारसी ज़बान से उर्दू में मुंतकली के बाद दास्तान गोई के इस फ़न को मज़ीद वुसअत मिली और इस का असर अदब की दूसरी अस्नाफ़ पर भी मुरत्तिब हुआ। सन 1880 के बाद तक़रीबन 2 दहाईयों तक दास्तान-ए-अमीर हमज़ा लखनऊ के गली कूचों और नुक्कड़ों में छाई रही और यही हाल दिल्ली में भी इस की मक़बूलियत का था ताहम इस पुराने फ़न में समाजी ढाँचे की तबदीली के साथ साथ ज़वाल पैदा होने लगा। इस की एक वजह ग़ालिबन दास्तानों में बज़्म-ए-हुस्न-ओ-तरब का ज़िक्र जो इस्लामी सक़ाफ़त में मायूब समझा जाता था तो दूसरी जानिब रीफ़ार्मस्ट तहरीक थी जो सन 1857 के बाद के दौर में पैदा हुई। इस के तहत इन दास्तानों को बोसीदा फ़न की शक्ल क़रार दे दिया गया।

फिर एक वो वक़्त भी आया जब 19वीं सदी के आख़िरी दास्तानगो मीर बाक़िर अली को में दिल्ली के बाज़ार में पान, छालीया बेचते देखा गया। ये वो फ़नकार था जो उमरा की पेशकश को ठुकरा देता था। वो अपने साथी फ़नकारों की दुनिया से रुख़्सती के बाद अपने घर में दास्तान गोई की महफ़िल मुनाक़िद करता। मीर बाक़िर की आवाज़ में बयान की हुई 3 मिनट की दास्तान आज भी तबरुकन लंदन की लाइब्रेरी के ख़ज़ीना में क़ीमती और नायाब असासे की सूरत में महफ़ूज़ है।

बाद के सालों में दास्तान गोई की जगह बाई स्कोप और थेयटर ने ले ली और यूं मशीनी दौड़ में ये फ़न कहीं कुचल कर वक़्त की धूल में दब गया और बिलआख़िर

20वीं सदी में अपने इख़्तेताम को पहुंचा। तकसीम-ए-हिंद के बाद बहुत से संजीदा अदीबों मसलन मुहम्मद हसन अस्करी, प्रोफ़ैसर सुहेल अहमद ख़ान और ज्ञान चंद जैन ने इन दास्तानों की तहों में छपी हुई माअनवियत और हक़ीक़त पसंदी के गौहर तलाश किए और अपने तहक़ीक़ी मज़ामीन में इस का ज़िक्र किया।

9 अगस्त को ककोरी ऐक्शन केस अपने 100 वाँ साल मुकम्मल करने जा रहा है। शायद ही किसी को इनकार हो कि इस तारीख़ी और इस तरह के दीगर वक़ियात को वह जगह नहीं मिली जिसके वे मुस्तहक़ हैं। यह शिकायत ख़ुद बिसमिल ने भी की थी, उन्हें अवाम और मीडिया की सर्द मोहरी पर काफ़ी अफ़सोस रहा है।

फ़ारसी में एक idiom है – "सियाही ए लश्कर"। तारीख़ के ऐसे किरदार जो मुनासिब जगह नहीं पाते उन्हें – सियाही ए लश्कर कहा जाता है,, अशफ़ाक़ उल्लाह ख़ान जैसे बहुत से किरदार हैं जो इस तारीफ़ मे आते हैं। अशफ़ाक़ मज़बूती के साथ दो क़ौमी नज़रिए को नकारते हैं, वह आज़ादी के लिए क़ुर्बानी की ज़रूरत को ख़त ए राशीदा करते हैं, इसके लिए अपनी लिमिटेड स्टडी के बावजूद वह कॉम्युनिज़म के हवाले से भी कलाम करते हैं और कहते हैं कि वह नज़रयाती तौर पर हमआहंग हैं।

अश्फ़ाक उल्लाह पर दास्तान गोई का यह ख़याल अचानक नहीं आया। यह बात सितम्बर 2024 की है, दिसम्बर 2024 में मीर अनीस की वफ़ात के 150 साल पूरे हो रहे थे। शहज़ाद भाई से बात हुई तो उन्होंने तजवीज़ पेश की कि मीर अनीस के हवाले

से दास्तान गोई का प्रोग्राम किया जाए। इसके लिखे जाने की ज़िम्मेदारी इस हक़ीर को सौंपी गयी। लेकिन जो मज़मून तैयार हुआ वह काफ़ी तवील था। इसी बीच 19 दिसम्बर के हवाले से शायद राकेश जी ने शहज़ाद भाई को किसी प्रोग्राम के इनीक़ाद के लिए हिदायत दी थी। इसके बाद इस हवाले से अशफ़ाक़ उल्लाह ख़ान पर काम शुरू हुआ और दिसंबर में दास्तान गोई के लिए मज़मून तैयार हो गया। अब दास्तान गोई के अपने तक़ाज़े हैं,, अदायगी के लिहाज़ से ज़रूरी तब्दीलियां होती रहीं।

यह दास्तान गोई अशफ़ाक़ उल्लाह की ज़िंदगी के साथ उनके अफ़कार को भी माक़ूल जगह देती है। हम सबका इरादा यह है कि इसे रवायती अन्दाज़ से थोड़ा हटकर पेश किया जाए, इसलिए इसकी शुरुआत साक़ी नामा से न करके अशफ़ाक़ के उस कलाम से करते हैं जो उन्होंने अपने केस के फ़ैसले की पूर्व संध्या यानी 12 जुलाई 1927 की रात को रचा था, इसके रावी ख़ुद शचिंदरनाथ बक्शी हैं।